P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika
E: ISSN NO.: 2349-980X Vol-II * Issue-XI*July-2015

वैदिक वाङ्मय में पुनर्जन्म की अवधारणा

राजेश कुमार बरवा
व्याख्याता,
संस्कृत विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,
बून्दी, राजस्थान

सारांश

भारतीय चिन्तन परम्परा में आत्मा अजर–अमर है। वह एक शरीर को छोड़कर दूसरा शरीर धारण करता है। आत्मा का इस प्रकार एक शरीर छोड़कर दूसरा शरीर धारण करना ही पुनर्जन्म है। पुनर्जन्म का सिद्धान्त कर्म सिद्धान्त के साथ सयुक्त है। हमारा वर्तमान जन्म पिछले जन्मों के किये गये शुभाशुभ कर्मों का परिणाम है तथा अगले जन्म का आधार वर्तमान जन्म में किये गये शुभाशुभ कर्म होंगे। इस आधार पर कहा जा सकता है कि पुनर्जन्म का सिद्धान्त नितान्त सत्य है।

मुख्य शब्द : जीवात्मा, शरीर, प्रारब्धकर्म, जन्म–मरण, पुनर्जन्म, मोक्ष।

प्रस्तावना

जब भी हम पुनर्जन्म की बात करते हैं। हमारे मन में कइ तरह के प्रश्न आ जाते हैं। जैसे– पुनर्जन्म क्या है? वास्तव में पुनर्जन्म होता है क्या? पुनर्जन्म होता है तो किसका होता है? यदि आत्मा का पुनर्जन्म होता है तो मरने के बाद आत्मा कहाँ जाती है और पुनर्जन्म कैसे होता है? इत्यादि।

इन प्रश्नों के समाधान के लिए मन में जिज्ञासा बनी रहती है। इन जिज्ञासाओं को शान्त करने के लिए साक्षात्कृत धर्मा ऋषियों, महर्षियों ने जो अपने पूर्वजों के प्रति कृतज्ञ थे और जो अपने को अतीत की भव्य परम्पराओं से विच्छिन्न होते नहीं देख सकते थे। इस प्रकार की व्यवस्था की जिससे आगे आने वाली पीढ़ियाँ अपने भव्य अतीत से न केवल परिचित हो सकें, प्रत्युत्त पूर्वजों के अनुभवों से लाभान्वित भी हो सकें, वह संस्कृत साहित्य के रूप में आज हमारे सामने है।

भारतीय चिन्तन परम्परा में आत्मा अजर–अमर है। वह एक शरीर को छोड़कर दूसरा शरीर धारण करता है। आत्मा का इस प्रकार एक शरीर छोड़कर दूसरा शरीर धारण करना ही पुनर्जन्म है। **'प्रेत्यभावः पुनरुत्पत्ति** :'यहाँ से जाकर फिर होना पुनर्जन्म है अर्थात् जिस शरीर को आत्मा एक बार छोड़ देता है उसे फिर प्राप्त नहीं कर सकता। गीता में कहा गया है कि जन्म–मरण के क्रम का न कोई आदि है और न ही कोई अन्त और यह क्रम निरन्तर जब तक चलता है जब तक कि मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो। जन्म–मरण के अनुक्रमण का कारण बताते हुए कहा है – **'पुनर्जन्मसिद्धिः आत्मनित्यवात्।**

आत्मा को नित्य मानने से ही शरीरों को छोड़ने और ग्रहण करने का अनुक्रम संभव है। यदि आत्मा अनित्य होता तो शरीर के साथ ही नष्ट हो जाता, फिर उसकी उत्पत्ति कहाँ से होती ? क्योंकि स्वरूप से उत्पन्न होकर नष्ट होने वाली वस्तु फिर से अस्तित्व में नहीं आ सकती। याज्ञवल्क्य ने प्रश्न किया कि जब वृक्ष को काट गिराते हैं तो वह अपने मूल से फिर खड़ा होता है। परन्तु जब मृत्य पुरुष को काट गिरातो है तो वह किस मूल से फिर खड़ा होता है?[1] जब किसी से उत्तर न बन पड़ा तो स्वयं याज्ञवल्क्य ने कहा कि वह मूल आत्मा है जो स्वरूप से कभी उत्पन्न न होता और सदा बना रहता है । मनुष्य अन्न की तरह पैदा होता है, बढ़ता है, नष्ट होता है और पुनः उत्पन्न हो जाता है।[2]

पुनर्जन्म के विषय में जानने से पूर्व जन्म और मृत्यु के विषय में ज्ञान होना आवश्यक है। अतएव कहा गया है – **'संयोगश्चजन्म।**' अर्थात् आत्मा का शरीर से संयुक्त होना जन्म है। जब शरीर का प्रत्येक अंग अपने कारण (नेत्र सूर्य में, श्वास वायु में, वाणी अग्नि में ,मन चन्दमा में, कान दिशाओं में, शरीर मिट्टी में, बाल पेड़ पौधों में, रक्त और वीर्य जल में और आत्मा आकाश में) लय हो जाता है। फलयोग के कारण प्रारब्ध कर्मों का क्षय हो जाने से संचित में से फलोन्मुख कर्माशय फिर सामने आ जाता है।

इस प्रकार पुनर्जन्म में किये गये पाप और पुण्य के फल भोगने के स्वभाव से युक्त आत्मा पूर्व शरीर को छोड़कर वायु, जल, प्राण आदि के माध्यम से वीर्य में प्रविष्ट हो जाता है। तदन्तर ईश्वर की प्रेरणा से योनि के द्वारा गर्भाशय में स्थित दस मास तक पूर्ण विकास को प्राप्त हो जाता है और फिर बाहर आ जाता है इसी को जीवात्मा का जन्म लेना कहते हैं। इसके विपरीत

'देहादात्मनो निश्क्रमण मृत्युः।' अर्थात् शरीर से जीवात्मा का निकल जाना मृत्यु है। चालू शरीर में प्रारब्ध कर्मों का भोग समाप्त होने पर शरीर का पतन हो जाता है, तब केवल देह का नाश होता है। आत्मा देह को छोड़ जाता है। देह का प्रत्येक अंग अपने कारण में लय हो जाता है।

वेदों में पुनर्जन्म के सिद्धान्त का निर्देश नहीं के बराबर है, किन्तु उसके बीज अवश्य दृष्टिगत होते हैं। ऋग्वेद के एक मन्त्र में मृतक के मन अर्थात् आत्मा से प्रार्थना की गई ह कि वह सुदूर स्थान से भ्रमण कर रहा है लौट आवें।[3] यजुर्वेद में कहा है कि मुझे मन फिर से प्राप्त हुआ है प्राण भी फिर से मिला है, मेरा देह युक्त आत्मा भी फिर से मिला है, मुझे आख और कान फिर से मिले हैं। अतएव मेरा जीवन मुझे फिर से मिला है।[4] निरुक्त में कहा गया है कि मैं मर कर पैदा हुआ, पैदा होकर फिर मरा, अनेक योनियों में मैने जन्म लिया, अनेक प्रकार के मैंने भोजन किये, अनेक स्तनों से मैंन दूध पिया, अनेक प्रकार के माता–पिता और मित्रों को देखा। गर्भ में नीचे सिर और ऊपर पैर इत्यादि नाना प्रकार की पीड़ाओं को सहन करके अनेक जन्मों को धारण किया।[5] आचार्य सायण भी अपने भाष्य में लिखते हैं कि, हे जीवात्मा ! जो जरा को प्राप्त हुआ है, आज मरता है वह दूसरे दिन दूसरा जन्म लेकर संसार में आ जाता है।[6] गीता में भी कहा गया है कि जो जन्म लेता है उसकी मृत्यु निश्चित है, जो मरता है उसका पुनर्जन्म सुनिश्चित है – **'जातस्य ही ध्रुवो मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च।'**[7]

ऋग्वेद में उल्लेख है कि महर्षि वामदेव को माता के गर्भ में ही आत्मज्ञान हो गया था। जिससे उन्होंने अनेक जन्मों की बातें जान ली थी। महाभारत की एक कथा में भीष्म श्रीकृष्ण से पूछते हैं कि आज म बाणों की शैय्या पर लेटा हूँ आखिर मैंने ऐसा कौन सा पाप किया था जिसकी यह सजा है। श्री कृष्ण उत्तर देते हैं कि आपको अपने छः जन्मों की बात याद है। लेकिन सातवें जन्म की बात याद नहीं है जिसमें आपने एक नाग को नागफनी के कांटों पर फैंक दिया था। यानी भीष्म के जन्म लेने से पहले उनके और कई जन्म हो चुके थे। इन्हें अपने पूर्व जन्मों की बात याद थी। महाभारत का प्रमुख पात्र शिखण्डी को भी अपने पूर्व जन्म की बातें याद थी, पूर्व जन्म में वह काशी की राजकुमारी थी। उस जन्म के अपमान का बदला लेने के लिए उसने शिखंडी के रूप में जन्म लिया।

उपनिषद् के अनुसार सूर्यलोक और चन्द्रलोक हैं, सूर्यलोक में जो प्राणी गमन करता है, वह बार–बार जन्म–मरण के चक्कर से एक निश्चित परन्तु अनन्तवत् अवधि तक मुक्त हो जाता है और जो लोग अपने कर्मों के अनसार चन्द्रलोक को प्राप्त करते हैं, वे चन्द्र की भांति पुनः–पुनः सुख भोगकर संसार में आते हैं।[8] इसी को अथर्ववेद में देवयान के नाम से वर्णित किया गया है।[9]

यजुर्वेद के एक मंत्र से स्पष्ट होता है कि इस संसार में हम दो प्रकार के जन्मो को सूनते हैं। एक मनष्य का शरीर धारण करना और दूसरा नीच गति से पशु, पक्षी, कीट, वृक्ष आदि का होना। इनमें मनुष्य शरीर के तीन भेद हैं– एक पितृ अर्थात् ज्ञानी होना, दूसरा देव अर्थात् सब विद्याओं को पढ़कर विद्वान् होना, तीसरा मृर्त्य अर्थात् साधारण मनुष्य शरीर धारण करना। इनमें प्रथम गति पुण्य आत्माओं की, द्वितीय गति पाप और पुण्य वालों की होती है और जो जीव अधिक पाप करते हैं उनकी तीसरी गति होती है। इन्हीं भेदों से जगत् के जीव अपने–अपने पुण्य और पाप भोग रहे हैं। जीवों को माता–पिता के शरीर में प्रवेश करके जन्म धारण करना, पुनः शरीर छोड़ना, फिर जन्म को प्राप्त होना बार–बार होता रहता है।[10]

उपनिषदों में भी पुनर्जन्म के पोषक बहुत से आख्यान हैं। छान्दोग्योपनिषद् में वर्णन आता है कि किसी समय श्वेतकेतु पाचालों की सभा में पहुंचे, वहा अतिथि राजा प्रवाहण जवली ने उनसे जीव की उत्क्रान्ति, परलोक गति और पुनर्जन्म के सम्बन्ध में एक के बाद एक प्रश्न पूछा किन्तु श्वेतकेतु जब उन प्रश्नों का उत्तर देने में असफल रहे तो अपने पिता के पास पहुंचकर उन प्रश्नों का उत्तर पूछा किन्तु पिता भी इन प्रश्नों का उत्तर न दे सकें। पिता–पुत्र जैवली के पास गये और इन प्रश्नों का उत्तर चाहा। गौतम की प्रार्थना सुनकर राजा चिन्तित हुये किन्तु गौतम के आग्रह पर 'पंचाग्नि विद्या' का उपदेश दिया और कहा कि जीव उल्लावृत दशा में नौ या दश महीने गर्भ में शयन करने के अनन्तर जन्म ग्रहण करता है, फिर जितनी आयु होतो है उतने दिन पृथ्वो पर रहकर मरणोपरान्त कर्मानुसार या तो देवयान या पितृयान मार्ग से परलोक में जाता है। यथा पुण्य लोकों में रहने के बाद पुण्य के क्षीण होने पर पुनः मां के गर्भ में आता है और कर्मानुसार उत्तम, मध्यम या अधम योनी प्राप्त करता है।[11]

देहान्तर प्राप्ति के विषय में बृहदारण्यकोपनिषद् में भी इसी प्रकार की चर्चा है।[12] कठोपनिषद् में नचिकेता कहता है कि मत्य तो सस्य की तरह पैदा होता है और पचकर नष्ट होता है तथा पुनः पैदा होता है। यम ने नचिकेता को आत्मतत्व का रहस्य समझाते हुये कहा है कि जो व्यक्ति इस लोक के भोग में डूबे रहते हैं उनका बार–बार जन्म होता है किन्तु जो आत्मा को नित्य समझकर परलोक का ध्यान रखकर सत्कार्य करते हैं, वे जन्म–मरण के बन्धन से छूट जाते हैं।[13]

उपनिषदों में पुनः इस बात का विवरण दिया गया है कि मनुष्य किस तरह से मरता है और पुनः जन्म लेता है।[14] इसको कई उदाहरणों से स्पष्ट किया है। जिस प्रकार जोंक जब घास की लम्बी पत्ती के अन्तिम सिरे पर पहुच जाती है तो वह सहारे के लिए कोइ अन्य स्थान खोज लेती है और फिर अपने को उसकी और खींचती है, उसी प्रकार यह जीवात्मा इस शरीर के अन्त पर पहुच कर सहारे के लिए कोइ अन्य स्थान खोज लेता है और अपने को उसकी और खींचता है। जिस प्रकार सुनार सोने के एक टुकड़े को लेकर उसे कोइ नवीन अधिक सुन्दर आकृति दे देता है, उसी प्रकार वह जीवात्मा इस शरीर को छोड़कर और अज्ञान को दूर कर कोई ओर नवीन रूप धारण कर लेता है, चाहे वह रूप प्रेतात्माओं का हो, अर्धदेवताओं का हो, प्रजापति का हो, ब्रह्म का हो या किसी अन्य सत्ता का।[15] गीता में भी कहा गया है कि जिस प्रकार पुराने वस्त्रों को छोड़कर नये वस्त्र धारण

करता है, उसी प्रकार देही अर्थात् शरीर का स्वामी पुराने शरीर को त्यागकर दूसरे नये शरीर को धारण करता है।[16]

पुर्वजन्म कृत पाप–पुण्य का भोगी जीवात्मा है। वह पूर्वजन्म में जो पाप–पुण्य हैं उसके अनुसार अच्छे–बुरे शरीर धारण करता है। अच्छा कर्म करने वाला अच्छा शरीर धारण करता है और अर्धाचरण करने वाला पशु आदि योनियों में जन्म लेता है।[17] जीवात्मा न केवल मनुष्य अपितु पशु योनी में भी जन्म ले सकता है। जल वनस्पति औषधि इत्यादि नाना स्थानों में भ्रमण और निवास करता हुआ जीव बार–बार पृथ्वी पर जन्म लेता है।[18] मृत्यु के बाद भी आत्मा की सत्ता बनी रहती है। और यह आत्मा जन्म–मरण के चक्र में तब तक बंधा रहता है जब तक उसे मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो जाती।[19]

पुनर्जन्म का सिद्धान्त कर्म सिद्धान्त के साथ संयुक्त है। हमारा वर्तमान जन्म पिछले जन्मों के किये गये शुभाशुभ कर्मों का परिणाम है तथा अगले जन्म का आधार वर्तमान जन्म में किये गये शुभाशुभ कर्म होंगे। इस आधार पर कहा जा सकता है कि पुनर्जन्म का सिद्धान्त नितान्त सत्य है।

संदर्भ

1. मृत्यः स्विन् मृत्युना वृक्तः कस्मान्मूलात्रोहति । (बृहदारण्यकोपनिषद् 3.9.8)
2. सस्यमिव पच्यते मर्त्यः सस्यमिवाजायते पुनः। (कठोपनिषद् 1.6)
3. 3 ऋग्वेद 10.58.1
4. यजुर्वेद 4.15
5. निरुक्त 14.6
6. तथा जरसा प्राप्तोद्य ममार म्रियते सहयः परेधुः समान सम्यक् चेष्टते। पुनर्जन्मान्तरे प्रादुर्भवतीत्यर्थः। (ऋग्वेद 10.55.5 सायण भाष्य)
7. श्रीमद्भगवद्गीता 2.27
8. मुण्डकोपनिषद् 1.2.11
9. अथर्ववेद 2.35.5
10. यजुर्वेद 19. 47
11. छान्दोग्योपनिषद् 6.2.9–16
12. बृहदारण्यकोपनिषद् 6.2.9–16
13. कठोपनिषद् 1.1.26–29
14. बृहदारण्यकोपनिषद् (4.3.33–38, 4.4.1–5), कठोपनिषद् (1.1.5–6)
15. बृहदारण्यकोपनिषद् (4.4.3–5), विष्णुस्मृति (20.50)
16. श्रीमद्भगवद्गीता 2.22
17. अथर्ववेद 5.1.2
18. यजुवद 12. 36–39
19. श्रीमद्भगवद्गीता 2.12–13